Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

आज़ादी के बाद की राजनीति और हरिशंकर परसाई के व्यंग्य

डॉ. कविता राजन
एसोसिएट प्रोफेसर, सत्यवती महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

Article Info
Volume 4 Issue 3
Page Number: 04-09

Publication Issue :
May-June-2021

Article History
Accepted : 02 May 2021
Published :15 May 2021

सारांश - हरिशंकर परसाई का व्यंग्य लोगों की राजनीतिक चेतना का विकास करता है। लोगों को राजनीतिक रूप से जागरूक बनाता है। वे राजनीतिक रूप से प्रतिबद्ध थे। इसी प्रतिबद्धता के साथ उन्होंने घटनाओं का मूल्यांकन किया है। इस क्रम में राजनीतिक अवसरवाद, भ्रष्टाचार, दलबदल, राजनीति की सिद्धांतहीनता तथा सांप्रदायिकता पर उनके व्यंग्य अत्यन्त सशक्त बन पड़े हैं। यह सब होते हुए भी परसाई जी के राजनीतिक व्यंग्यों का अपना महत्व है।

मुख्य शब्द - हरिशंकर परसाई, राजनीतिक, साहित्य, आज़ादी, व्यंग्य, सांप्रदायिकता, अवसरवाद, भ्रष्टाचार, दलबदल, सिद्धान्तहीनता।

हरिशंकर परसाई एक ऐसे प्रतिभा संपन्न रचनाकार हैं। दृष्टि आज़ादी के बाद राजनीति के बदलते चरित्र पर लगातार जिनकी केन्द्रित थी। आज़ादी के बाद की हर राजनीतिक घटना पर उनकी नजर थी। अतः आज़ादी के बाद का विस्तृत राजनीतिक घटनाक्रम उनके साहित्य में समाविष्ट है। स्वातंत्र्योत्तर राजनीति को जानने और समझने के लिए परसाई का साहित्य इस प्रकार एक उपलब्धि है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता।

आज़ादी के बाद राजनीति में तेजी से बदलाव आया। स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान उसकी जो मूल्य और मान्यताएं थीं, स्वतंत्रता के उपरान्त व तेजी से गायब होने लगीं। त्याग और सेवा के स्थान पर राजनीति अब सत्ता प्राप्ति का साधन बन गई। उसमें भाई–भतीजावाद, अवसरवाद और

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया। अब तक जो नेता लोगों के आदर्श और त्याग की प्रतिमूर्ति थे, सत्ता की अंधी दौड़ में उनका चारित्रिक पतन होने लगा और जनता की नजरों में उनका महत्व घटने लगा। राजनीति अपने सिद्धांतों और विचारों से हट गई। आज़ादी के बाद राजनीति के इस चारित्रिक पतन को लक्षित करते हुए हरिशंकर परसाई ने लिखा है, "सिद्धान्त, नैतिकता, मूल्य, ईमान सब इस राजनीति से गायब हो चुके। राजनैतिक संस्कृति सड़ चुकी। किसी छोटे से बड़े नेता तक को आज ईमानदार और सिद्धान्तवादी कहने में खतरा है। सुननेवाला गुस्से से चाँटा मार देगा। किसी को विश्वास नहीं है।"[प] स्वतंत्रता के बाद जिस तरह राजनीति से सिद्धान्त और मूल्य गायब होने लगे उससे लोगों का नेताओं पर से विश्वास उठने लगा और राजनीति विकलांग हो गई। चुनाव नीतियों और कार्यक्रमों पर आधारित न होकर छल–कपट और जोड़–तोड़ से जीते जाने लगे। 'विकलांग राजनीति' और 'भेड़ें और भेड़िये' में परसाई जी ने इस पर व्यंग्य किया है। 'विकलांग राजनीति' में उन्होंने उन लोगों पर व्यंग्य किया है जिनके पास चुनाव लड़ने के लिए वास्तविक मुद्दे नहीं होते हैं और वे जनता को झूठी बातों द्वारा गुमराह करके चुनाव जीतना चाहते हैं। अपनी टूटी टाँग के रूपक के माध्यम से उन्होंने लिखा है, "नहीं, टाँग टूटने से उसका अलग व्यक्तित्व हो गया है। बल्कि टूटी टाँग ने राष्ट्रीय जीवन में आपको महत्वपूर्ण बना दिया है। हमें अनुमति दीजिए कि हम प्रचार कर दें कि कांग्रेसियों ने आपकी टाँग तोड़ दी।"[ii]

'कबिरा खड़ा बाजार में', 'यह माजरा क्या है?', 'सुनो भाई साधो' और 'अरस्तू की चिट्ठी' जैसे कालमों में हरिशंकर परसाई ने राजनीतिक विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य लिखा है। स्वतंत्रता के बाद की राजनीति का स्वरूप, संसद और सरकार की कार्यप्रणाली, सत्तापक्ष और विपक्ष की भूमिका, जय प्रकाश नारायण की क्रान्ति और इंदिरा गाँधी द्वारा आपातकाल का लगाया जाना आदि सभी महत्वपूर्ण घटनाक्रमों की आलोचना का दायरा इनकी रचनाओं में है। राजनेताओं के सत्तालोलुप चरित्र, अवसरवादिता और राजनीतिक मूल्यहीनता की आलोचना करके परसाई जी ने जनता को जागरूक बनाने का कार्य किया है। आज़ादी के बाद पार्टियों के सिद्धान्तों और व्यवहारों में तथा नेताओं के कथनी और करनी में बढ़ते भेद पर व्यंग्य करके उन्होंने राजनीतिक विसंगतियों को उद्घाटित किया है। नेहरू के बाद देश में आये राजनीतिक अस्थिरता के परिणामस्वरूप सत्ता के लिए जोड़–तोड़ की राजनीति का तेजी से विकास हुआ। दलबदल और विधयकों तथा सांसदों की खरीद–फरोख़्त ने राजनीति को एक व्यावसायिक मंडी बना दिया। हरिशंकर परसाई ने इस प्रवृत्ति पर जमकर प्रहार किया है।

आज़ादी के बाद देश में जनतंत्र की स्थापना हुई जिसमें संसद का महत्त्व है। संसद देश के लिए कानून का निर्माण करती है तथा वह देश की सबसे बड़ी पंचायत है। परन्तु संसद और सांसदों का रवैया जनता के प्रति कई दृष्टि गैर–जिम्मेदाराना है। हरिशंकर परसाई ने संसद के इस रवैये पर व्यंग्य किया है। जब देश की जनता अकाल से पीड़ित है तब संसद का समय बेकार की बहसों में चला जाता है। जनता की वास्तविक समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। 'संसद में 'मुंडन', 'संसद और मंत्री की मूँछ' आदि व्यंग्य–निबंधों में इसे देखा जा सकता है। संसद का बहुमूल्य समय केवल इस बात पर बहस में चला जाता है कि अमुक सदस्य ने मुंडन कराया है या नहीं, मंत्री ने मूँछ क्यों मुड़ाई है। हरिशंकर परसाई ने सरकार की कार्यप्रणाली की विसंगतियों को भी उद्घाटित किया है। सरकार समस्याओं के समाधान का प्रयास नहीं करती है बल्कि उस पर जाँच कमीशन या कमेटी बैठा कर उसे टाल देती है। यह सरकार की अकर्मण्यता को दर्शाता है। सरकार अपनी अकर्मण्यता और विफलता को छिपाने के लिए कमेटियों और जाँच कमीशनों का सहारा लेती है। छोटी–से–छोटी बात पर एक कमेटी बैठा दी जाती है। जो सालों तक जाँच करती है और नतीजा सिफर होता है।

रोजाना इतने आयोगों और कमेटियों का गठन होता है कि उनकी वास्तविक संख्या जानने के अलग से उन पर आयोग के गठन की आवश्यकता होती है। 'जाँच कमीशन : सरकार का कुल्ला' और 'कमेटियों पर कयामत' में परसाई जी ने कमेटियों और कमीशनों की वास्तविकता को उद्घाटित किया है। "इस रफ्तार से कमीशन बैठ रहे हैं कि अब मुझे डर लगने लगा है। किसी दिन यह दुर्घटना घट सकती है कि मेरे बारे में कोई जाँच कमीशन बैठ जाये, या मैं ही किसी कमीशन का सदस्य नामजद कर दिया जाऊँ।"[पपप] हरिशंकर परसाई ने जाँच कमीशनों को सरकार का कुल्ला कहा है, "सरकार इस तरह कमीशन बिठाती है, जैसे हम कुल्ला करते हैं। जाँच कमीशन सरकार का कुल्ला ही है। मुँह साफ करने के लिए कुल्ला कर लिया, और नकली दाँतों का सेट लगा लिया।"[पअ] वास्तव में सरकार के लिए कमेटी और जाँच कमीशन एक सुरक्षा कवच की तरह कार्य करता है। "कमेटी वह दीवार है, जिसके पीछे सरकार छिप जाती है। इधर से पत्थर फेंके जा रहे हैं, मगर कमेटी की दीवार से टकराकर वे गिर रहे हैं।"[v] सरकार जनता की आवाज को चुप कराने के लिए जाँच कमीशनों का गठन कर देती है। "सरकार को कोई समस्या हल करनी नहीं है। उसके वश की बात नहीं है। जब समस्या हल न करनी हो, या वह हल न होती हो, तो कमीशन बिठा दो। भूखा रोटी माँगता हो तो उससे कहो–मुँह खोल। वह मुँह खोले तो उसमें कमीशन डाल दो–ले,

जिन्दगी–भर जुगाली करता रह।"[अप] मंत्री के मुण्डन जैसे निरर्थक विषय पर संसद सदस्य अनावश्यक बहस करते हैं और सरकार उस पर जाँच कराने का आदेश देती है। मुंडन विवाद पर मंत्री सदन में वक्तव्य देते हैं, "अध्यक्ष महोदय! सदन में यह प्रश्न उठाया गया कि मेरा मुण्डन हुआ है या नहीं। यदि हुआ है, तो वह किसने किया है। ये प्रश्न बहुत जटिल हैं। और इस पर सरकार जल्दबाजी में कोई निर्णय नहीं दे सकती। मैं नहीं कह सकता कि मेरा मुण्डन हुआ है या नहीं। जब तक पूरी जाँच न हो जाये, सरकार इस संबंध में कुछ नहीं कर सकती। हमारी सरकार तीन व्यक्तियों की एक जाँच समिति नियुक्त करती है, जो इस बात की जाँच करेगी। जाँच समिति की रिपोर्ट मैं सदन में पेश करूँगा।"[अपप] वास्तव में यह संवैधानिक संस्थाओं और जनता की आस्था के साथ खतरनाक मजाक है जिस पर परसाई जी ने प्रहार किया है।

रामनिहाल गुंजन ने हरिशंकर परसाई के राजनीतिक व्यंग्यों को तीन भागों में विभाजित किया है– "हरिशंकर परसाई के राजनीतिक व्यंग्य तीन प्रकार के हैं। एक प्रकार का राजनीतिक व्यंग्य यह है, जो राजनीतिक विषयों पर लिखने के क्रम में सामने आता है। दूसरी तरह के व्यंग्य का सरोकार राजनीतिक व्यक्तियों के प्रसंग में व्यक्त विचारों से है। दोनों प्रकार व्यंग्यों की प्रस्तुति कभी–कभी तो एक ही लेख में दिखाई पड़ जाती है, किन्तु तीसरे प्रकार के व्यंग्य के जरिये परसाई ज्यादातर और अमूमन उन स्थितियों पर व्यंग्य करते देखे जाते हैं, जो भारतीय समाज की आर्थिक और सामाजिक विसंगतियों से जुड़ी हैं। ....इस दृष्टि से लिखे उनके राजनीतिक व्यंग्य लेखों में 'गुड़ की चाय', 'अन्न की मौत', 'पहला सफेद बाल', 'दो नाक वाले लोग', 'गेहूँ का सुख', 'हरिजनों को पीटने का यज्ञ', 'अकाल–उत्सव', 'संसद और मंत्री की मूँछ', 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', 'महात्मा गाँधी को चिट्ठी पहुंचे', 'विकलांग श्रद्धा का दौर', 'अति क्रांतिकारी', 'लिटरेचर ने मारा मुझे' आदि विशेषतः उल्लेख्य हैं।"[viii] हरिशंकर परसाई ने अपने व्यंग्यों में जनतंत्र की खामियों और उसकी विसंगतियों को उद्घाटित किया है। 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', 'गणतंत्र का तोहफा', 'लोकतंत्र की नौटंकी' में आम जनता की वास्तविक स्थिति का उद्घाटन हुआ है। उन्होंने 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' नामक रचना में वर्तमान परिस्थिति, नेताओं में व्याप्त स्वार्थ एवं सड़ांध, नेताओं के झूठे वादों और घोषणाओं और समाजवाद की दुहाई देने वाले दलों और नेताओं की सच्चाई को उजागर किया है। भारत की अर्थनीति पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा है– "छब्बीस जनवरी के पहले ऊपर बर्फ पड़ जाती है। शीत–लहर आती है, बादल छा जाते हैं, बूँदाबाँदी होती है और सूर्य छिप जाता है। जैसे दिल्ली की

अपनी अर्थनीति नहीं है, वैसे ही अपना मौसम भी नहीं है। अर्थनीति जैसे डालर, पौण्ड, रुपया, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष या भारत सहायता क्लब से तय होती है, वैसे ही दिल्ली का मौसम कश्मीर, सिक्किम, राजस्थान आदि तय करते हैं।"[ix]

हरिशंकर परसाई ने लिखा है, "स्वतंत्रता–दिवस भीगता है और गणतंत्र–दिवस ठिठुरता है।... हम नहीं बजा रहे हैं, फिर भी तालियाँ बज रही हैं। मैदान में जमीन पर बैठे वे लोग बजा रहे हैं, जिनके पास हाथ गरमाने के लिए कोट नहीं है। लगता है, गणतन्त्र ठिठुरते हुए हाथों की तालियों पर टिका है। गणतंत्र को उन्हीं हाथों की ताली मिलती है, जिनके मालिक के पास हाथ छिपाने के लिए गर्म कपड़ा नहीं है।"[x] वास्तविकता यह है कि आज भी आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहा है। न लोगों को खाने के लिए पर्याप्त खाद्यान्न है और न पहनने के लिए कपड़े। ये वही लोग हैं जो गणतंत्र दिवस के अवसर पर ताली बजाते हैं क्योंकि इनके पास हाथ गर्म करने वाले कोट नहीं हैं। वस्तुतः वे ताली नहीं बजाते हैं बल्कि ठण्डक से बचने के लिए अपने हाथ को गर्म रखने का प्रयास करते हैं।

हरिशंकर परसाई प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। उनकी प्रतिबद्धता वंचित, शोषित, पीड़ित निम्न और निम्न मध्यवर्गीय जनता के प्रति है। उनकी विचारधारा मार्क्सवादी है और वे कम्युनिस्ट पार्टी से संबद्ध थे। इसलिए उन्होंने अपने साहित्य में समाजवादी मूल्यों की स्थापना के लिए निरन्तर प्रयास किया है। उन्होंने वंचितों और शोषितों की समस्याओं– गरीबी, अकाल, भुखमरी के लिए उत्तरदायी पक्षों पर प्रहार किया है। हरिशंकर परसाई क्रान्ति के लिए व्यवस्था में बदलाव के लिए लोगों का आह्वान करते हैं। उनकी रचनाओं – 'चूहा और मैं', 'अकाल–उत्सव', 'धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे', 'घायल वसंत', 'नाग यज्ञ', 'न्याय का दरवाजा' आदि में व्यवस्था में परिवर्तन के लिए संघर्ष का आह्वान और हिंसा का संकेत है। इस पर उनका विचार है कि जब शोषित लोग अपने अधिकारों के लिए लड़ने लगते हैं तो उनके संघर्ष को हिंसा के नाम पर दबाने का प्रयास किया जाता है। उन्हीं के शब्दों में, "'अकाल–उत्सव' जैसी और भी कहानियाँ मैंने लिखी हैं। एक कहानी 'चूहा और मैं' है। इसमें हिंसा का संकेत है। यह अजब बात है बल्कि षड्यंत्र है कि जब शोषित लोग लड़ने लगते हैं तब ही यह शोर हो जाता है कि हिंसा हो रही है। शोषक वर्ग की हिंसा सिर्फ 'लॉ एण्ड आडर प्राबलम्' कहलाती है। शासन की हिंसा संवैधानिक बन जाती है।"[xi]

'अकाल–उत्सव' नामक फैंटेसी में हरिशंकर परसाई ने बार–बार पड़ने वाले अकाल और उसके परिणामस्वरूप भूख के संत्रास को व्यंजित किया है। अकाल पड़ना इतनी आम बात हो गई है कि लोग उसे उत्सव के रूप में मनाते हैं। इसमें परसाई जी ने नेताओं और जमाखोरों दोनों की मानसिकता को भी उद्घाटित किया है। नेता और जमाखोर तथा मुनाफाखोर सभी चाहते हैं कि अकाल पड़े जिसस वे अपने स्वार्थों की पूर्ति कर सकें। अकाल को मुद्दा बनाकर नेता चुनाव जीतना चाहते हैं तो जमाखोरी और कालाबाजारी के द्वारा व्यापारी अधिक से अधिक मुनाफा कमाना चाहते हैं। अकाल को उत्सव के रूप में मनाये जाने पर हरिशंकर परसाई लिखते हैं, "मैं देखता हूँ– भूखे बिलबिला रहे हैं। मजदूरी नहीं मिलती। मिलती है तो दाना नहीं मिलता। मिलता है तो महँगा मिलता है। महँगा मिलता है, तो उसमें न जाने क्या–क्या कचरा मिला रहता है। भूखे और अधमरे चिल्लाते हैं– रोटी नहीं तो उत्सव काहे का! उत्सव फेल हो गया है।"[गपप] भूखे लोगों को अधिक देर तक बरगलाकर नहीं रखा जा सकता है। अकाल उत्सव अधिक दिन तक नहीं चल सकता है क्योंकि भूख आदमी की बुनियादी आवश्यकता है। और भूखा व्यक्ति अधिक दिन तक चुप नहीं रह सकता है। धूमिल के शब्दों में, **'भूख से भागा हुआ आदमी, भाषा की ओर जायेगा/ एक भुककड़ जब गुस्सा करेगा, अपनी ही उंगलियां चबाएगा।'** परन्तु हरिशंकर परसाई यहीं नहीं रूकते हैं। उनके अनुसार भूखा व्यक्ति सत्ता–प्रतिष्ठानों और व्यवस्था को उखाड़ फेंकेगा। वह अपनी ही उंगलियां नहीं चबाएगा बल्कि शोषकों का संहार भी करेगा। फ्अब ये भूखे क्या खायें? भाग्य–विधाताओं और जीवन के थोक ठेकेदारों की नाक खा गये, कान खा गये, हाथ खा गये, टाँग खा गये। अब क्या खायें? अब क्या खायें? आखिर वे विधन–सभा और संसद की इमारतों के पत्थर और ईंटे काट–काटकर खाने लगे।"[गपपप] इतना ही नहीं 'धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे' नामक व्यंग्य में हरिशंकर परसाई पूरी संवैधानिक व्यवस्था और संविधान को चूहों से कुतरवा देते हैं। "पहले चूहे संविधान कुतरकर खा जाते हैं। फिर चूहे सरकार को खा जाते हैं, संसद को खा जाते हैं, न्यायपालिका को खा जाते हैं।"[xiv] 'चूहा और मैं' में उन्होंने लोगों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया है। चूहों के रूपक के माध्यम से उन्होंने लिखा है, "फिर वह कहीं से अपने एक भाई को ले आया। कहा होगा– 'चल रे, मेरे साथ उस घर में। मैंने उस रोटीवाले को तंग करके, डराके, खाना निकलवा लिया है। चल, दोनों खायेंगे। उसका बाप हमें खाने को देगा। वरना हम उसकी नींद हराम कर देंगे। हमारा हक है।'... मगर मैं सोचता हूँ– आदमी क्या चूहे से भी बदतर हो गया है? चूहा तो अपनी रोटी के हक के लिए मेरे सिर पर चढ़ जाता है, मेरी

नींद हराम कर देता है? इस देश का आदमी कब चूहे की तरह आचरण करेगा?"[गअ] व्यवस्था चाहे किसी भी प्रकार की हो हर जगह गरीबों का शोषण होता है माँगने से कुछ नहीं मिलता, उसके लिए लड़ना पड़ता है। व्यवस्था को अपने अनुकूल बनाना पड़ता है। 'घायल वसन्त' नामक व्यंग्य में वसन्त के माध्यम से उन्होंने व्यवस्था में बदलाव का आह्वान किया है। वसन्त अपने–आप नहीं आता बल्कि उसे लाना पड़ता है। चीजें अपने–आप नहीं बदलती हैं, उन्हें अपने अनुसार बदलना पड़ता है। "मौसम की मेहरबानी पर भरोसा करेंगे, तो शीत से निपटते–निपटते लू तंग करने लगेगी। मौसम के इन्तजार से कुछ नहीं होगा। वसन्त अपने–आप नहीं आता; उसे लाया जाता है। सहज आनेवाला तो पतझड़ होता है, वसन्त नहीं। अपने–आप तो पत्ते झड़ते हैं। नये पत्ते तो वृक्ष का प्राण–रस पीकर पैदा होते हैं। वसन्त यों नहीं आता। शीत और गरमी के बीच से जो जितना वसन्त निकाल सके, निकाल ले।"[गअप] इसी प्रकार 'नाग–यज्ञ' में भी परसाईजी ने व्यवस्था–परिवर्तन की बात कही है– "इस व्यवस्था की चादर फटकर तार–तार हो गयी है और रफूगर उसमें पैबन्द लगाने की कोशिश कर रहे हैं। तार–तार में कही पैबन्द लगता है। चादर ही बदलनी पड़ेगी जनाब।"[गअपप] हरिशंकर परसाई पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए प्रयास करते हैं जिसमें किसी का शोषण नहीं होगा, सबको विकास का समान अवसर प्राप्त होगा।

आज़ादी के बाद राजनीति में बढ़ते हुए अवसरवाद और भ्रष्टाचार पर हरिशंकर परसाई ने सबसे अधिक व्यंग्य किया है। स्वाधीनता के उपरान्त नौकरशाही और राजनीति दोनों में भ्रष्टाचार तेजी से बढ़ा। राजनेताओं ने स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान जो त्याग किया था, आज़ादी के बाद वे उसकी वसूली में लग गये। या तो वे कुर्सीपकड़ की दौड़ में शामिल हो गये, नहीं तो दोनों हाथों से घर भरने का अभियान शुरू कर दिया। परसाईजी इससे बहुत अधिक खिन्न थे। अतः उन्होंने ऐसे लोगों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया हैं। 'लंका–विजय के बाद' नामक व्यंग्य में राम और उनकी वानर सेना के पौराणिक चरित्रों के माध्यम से उन्होंने दलगत वास्तविकताओं को उद्घाटित किया है। वानर अपने घाव को दिखा–दिखाकर जनता को लूट रहे हैं और उत्पात मचा रहे हैं। उसी प्रकार हमारे नेताओं ने अपने त्याग को तमगे के रूप में पहनकर उसके माध्यम से विशेषाधिकार और सुविधाएं प्राप्त करने की जुगाड़ में लग गये। हरिशंकर परसाई ने उनकी इस प्रवृत्ति पर प्रहार किया है। 'सुदामा के चावल', 'अयोध्या में खाता बहीं', 'सड़क बन रही है', 'भोलाराम का जीव', 'भ्रष्टाचार–वितरण का कार्यक्रम', 'सदाचार की तावीज', 'भ्रष्टाचार–नियोजन आन्दोलन', 'उखड़े खम्भे' आदि व्यंग्यों में उन्होंने नौकरशाही और राजनीति

में व्याप्त भ्रष्टाचार को उद्घाटित किया है। 'इंस्पेक्टर यातादीन चाँद पर', 'रामसिंह की ट्रेनिंग' आदि में परसाईजी ने पुलिस प्रशासन की विसंगतियों और उसके शोषणकारी चरित्र का पर्दाफाश किया है।

परसाईजी ने आपातकाल के बाद की राजनीतिक अस्थिरता, दलबदल, सांसदों और विधायकों की खरीद–फरोख्त को अपने व्यंग्यों का लक्ष्य बनाया है। उस समय नेता एक दिन में तीन–तीन पार्टियाँ बदलते थे। राजनीति का कोई सिद्धान्त और मूल्य नहीं रह गया था बल्कि सत्ताप्राप्ति ही राजनीति का एकमात्र उद्देश्य बन गया था। गैर कांग्रेसी पार्टियों के पास देश के विकास के लिए कोई कार्यक्रम नहीं था, कोई विजन नहीं था। उनका एकमात्र लक्ष्य इंदिरा गाँधी को सत्ता से हटाना था। परसाई जी जानते थे केवल कांग्रेस विरोध या कि सत्ता परिवर्तन से ही देश का विकास नहीं होने वाला है। इसलिए वे गैर कांग्रेसी पार्टियों की आलोचना करते हैं जो केवल सत्ता प्राप्ति के लिए ही एक हुई थीं। 'विधायक नये बाजार में' नामक व्यंग्य में उन्होंने लोकतंत्र को विधायकों के क्रय–विक्रय के बाजार में स्थापित करने की आलोचना करते हैं। उन्होंने लिखा है, "जैसे चकले का मालिक कई रण्डियाँ रखता है, वैसे ही भजनलाल ने थोक विधायक खरीद लिए।" तथा फ्यह खरीद बिक्री आम चीज जैसी नहीं है। आलू बिकता है तो उसके दाम आलू को नहीं दूकानदार को मिलते हैं। विधायक बिकता है तो दाम उसी के हाथ में जाते हैं।ट[गअपपप] 'कांग्रेसी समाजवादी', 'लोहियावादी समाजवादी' और 'प्रजावादी समाजवादी' में परसाई जी ने समाजवादियों पर व्यंग्य किया है। 'तीसरी आज़ादी का जाँच कमीशन–1', 'तीसरी आज़ादी का जाँच कमीशन–2' और 'तीसरी आज़ादी का जाँच कमीशन–3' में हरिशंकर परसाई ने आज़ादी के बाद की राजनीतिक स्थिति को विशेष ढंग से रेखांकित किया है।

हरिशंकर परसाई का व्यंग्य लोगों की राजनीतिक चेतना का विकास करता है। लोगों को राजनीतिक रूप से जागरूक बनाता है। उन्होंने अपने दौर की राजनीति का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण एवं परीक्षण किया और तत्पश्चात उस पर अपना विचार व्यक्त किया। आज़ादी के बाद की लगभग प्रत्येक राजनीतिक घटना पर उन्होंने अपनी लेखनी चलायी है। वे राजनीतिक रूप से प्रतिबद्ध थे। इसी प्रतिबद्धता के साथ उन्होंने घटनाओं का मूल्यांकन किया है। इस क्रम में राजनीतिक अवसरवाद, भ्रष्टाचार, दलबदल, राजनीति की सिद्धांतहीनता तथा सांप्रदायिकता पर उनके व्यंग्य अत्यन्त सशक्त बन पड़े हैं। परन्तु अपने युग की राजनीति के अंतर्विरोधों को पकड़ने में कहीं न कहीं उनकी दृष्टि चूक गई है। इसलिए राजनीतिक परिस्थितियों और राजनेताओं के मूल्यांकन से संबंधित

व्यंग्यों में एक सरलीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है जो उनके शेष व्यंग्यों में नहीं मिलती। यह सब होते हुए भी परसाई जी के राजनीतिक व्यंग्यों का अपना महत्व है। उसमें राजनीतिक परिदृश्य से टकराने की ताकत है और पाठकों को सचेत करने का लालित्यपूर्ण विवेक!

संदर्भ

i. हरिशंकर परसाई, 'तुलसीदास चंदन घिसैं', पृ. 43
ii. परसाई रचनावली–1, (सं.) मण्डल, कमलाप्रसाद, धनंजय वर्मा, श्यामसुन्दर मिश्र, मलय, श्याम कश्यप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः जनवरी 2005, पृ. 199
iii. परसाई रचनावली–4, पृ. 32
iv. परसाई रचनावली–4, पृ. 33
v. परसाई रचनावली–5, पृ. 81
vi. परसाई रचनावली–4, पृ. 34
vii. परसाई रचनावली–1, पृ. 396
viii. कमला प्रसाद (सं.), 'युगसाक्षी', हरिशंकर परसाई', साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 2004, पृ. 230
ix. परसाई रचनावली–3, पृ. 75
x. वही, पृ. 77
xi. कमला प्रसाद (सं.), 'आँखन देखी', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 49
xii. परसाई रचनावली–1, (सं.) मण्डल, कमलाप्रसाद, धनंजय वर्मा, श्यामसुन्दर मिश्र, मलय, श्याम कश्यप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः जनवरी 2005, पृ. 317
xiii. परसाई रचनावली–1, पृ. 319
xiv. परसाई रचनावली–4, पृ. 400
xv. परसाई रचनावली–1, पृ. 161
xvi. परसाई रचनावली–3, पृ. 224
xvii. परसाई रचनावली–4, पृ. 105
xviii. हरिशंकर परसाई, 'तुलसीदास चंदन घिसैं', पृ. 148–149